नटखट चाची

अमृतलाल नागर



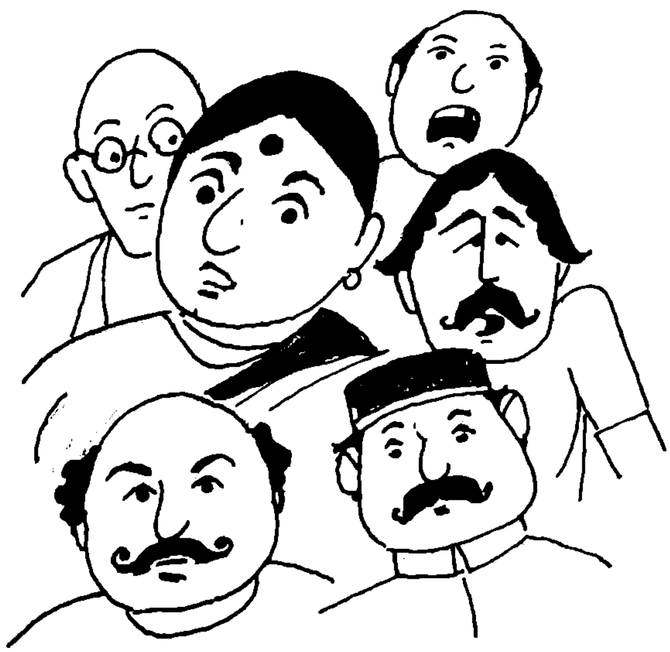


नटखट चाची

मूल्य : तीस रुपये (Rs. 30.00)
संस्करण : 2010
ISBN 978-81-7028-549-6
NATKHAT CHACHI (Stories) by Amritlal Nagar
राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110 006
website : www.rajpalpublishing.com
e-mail : mail@rajpalpublishing.com

नटखट चाची

अमृतलाल नागर



राजपाल

क्रम

नटखट चाची	7
ज़मींदार बाबू	14
सूअर की कहानी	20
अमृतलाल नागर बैंक लिमिटेड	25
लिटिल रेड इजिप्शिया	34

नटखट चाची

भाई, यह तो तुम्हें भी मालूम होगा कि गलती इन्सान से ही होती है, हैवान से नहीं। और ज़रा देर के लिए यह भी समझ लो कि मैं भी एक इन्सान ही हूँ। बस, इसी वजह से मैं भी गलती कर बैठा—चाचा को चोर समझ लिया, हालाँकि इसमें ख़ता चाचीजी की ज़्यादा थी।

'बाल-विनोद' के होलिकाँक में उम्र जानने की तालिका निकली थी। अगर ज़रा कोशिश करो, तो तुम्हें मालूम हो जाएगा कि बीस वर्ष पहले मेरी उम्र वही थी, जो आज तुम्हारी है। पिताजी मरते समय मुझे बजाय किसी अनाथालय में दान करने के, चाचा को सौंप गए थे और चाचा साहब ने मुझे चाची के हाथों सौंप दिया।

मेरे चाचा के घर आने के बाद ही चाची ने नौकर को झाड़ मारकर निकाल दिया, और मुझे तीन काम सौंपे—सवेरे उठकर मण्डी से तरकारी लाना, इसके बाद उनके गोदीवाले बच्चे को खिलाना और फिर मार खाना। ये तीनों काम मैं रोज़ बिना किसी हीले-हवाले पूरा कर लिया करता था। इसीसे मेरी चाची अक्सर प्रसन्न होकर मुझे बड़े प्रेम से खाने के लिए गालियाँ दिया करती थीं।

हाँ, एक काम उन्होंने मुझे और सौंपा। बात यों हुई कि एक दिन चाचीजी पड़ोस में किसी के घर पचास ताले टूटने की बात

सुन आई थीं। घर आकर उन्होंने मुझसे कहा—"रमेश तू दिन-पर-दिन बड़ा कामचोर और निखट्टू होता चला जा रहा है। दिन-भर सिवा खेलने-कूदने और दंगा करने के तुझे और कोई भी काम नहीं। आज से रात में किताब लेकर बैठा कर। और, जो तू किसी दिन भी बारह बजे से पहले सोया, तो तेरी हड्डी-पसली तोड़ दूँगी। समझा?" इसके बाद चाचीजी ने बड़ी दया करके मेरे दोनों कान अच्छी तरह हिला दिए, जिससे मैं उनकी बात अच्छी तरह समझ जाऊँ।

चाचीजी फिर कहने लगीं—"और सुन, ज़रा आँख खोलकर। आज-कल चोरों का बड़ा हुल्लड़ है। अभी-अभी पड़ोस में सुनकर आई हूँ, किदारनाथ के घर चोरों ने पचास ताले तोड़े थे। सुना?"

सुन तो ख़ैर लिया, मगर एक बात समझ में न आई—आँखें खोलकर पढ़ने और चोरों के हुल्लड़ में आखिर क्या सम्बन्ध था। बहरहाल, जो भी हो, उस वक्त मुझे अच्छी तरह याद है, पढ़ने-लिखने की बात तो दरकिनार रही, दिमाग चोरी की बात सोचने में उलझ गया। बहुत-सी बातें दिमाग में चक्कर काट गईं।

तेल अधिक खर्च न हो, इस ख्याल से चाचीजी ने लालटेन ज़रा धीमी कर मुझे पढ़ने की आज्ञा दी। ऐसी हालत में मेरे लिए सचमुच ही आँखें खोलकर पढ़ना बहुत ज़रूरी हो गया था।

याद करना शुरू किया—"सी-ए-टी—कैट, कैट माने बिल्ली—"

चाची चारपाई पर पड़ी सुन रही थी। ज़रा घुड़क कर उन्होंने पूछा—"इसके माने—"

उनकी बात काटकर मैंने घबराई हुई आवाज़ में कहा—"इसके माने चाची, सी-ए-टी—कैट माने बिल्ली, चाची।"

मारे गुस्से के चाची चुकन्दर हो गईं। कहने लगीं—"अरे, तुझे मैं मना कर रही हूँ कि इसके माने मत याद कर। जो कहीं मुनुआ सुन लेगा तो रात-भर नहीं सोएगा; मगर तू ऐसा मधा है कि मानता


नटखट चाची

तक नहीं।"

क्या करता! —चुप हो रहा। मगर मन-ही-मन पढ़ते-पढ़ते धीरे-धीरे नींद आने लगी। ज़रा ऊँघ गया।

पता नहीं, कब तक ऊँघता रहा। मगर एकाएक अपनी पीठ पर धमाके की आवाज़ सुन आँखें खुल गईं। एक हाथ से पीठ सहलाते हुए मैंने पढ़ना शुरू किया—"एस ऊँ-ऊँ-ऊँ।"

खोपड़ी पर खड़ी हुई चाचीजी उस समय मुझे पूरे ढाई हाथ की देवी मालूम पड़ रही थीं। पीठ पर इस कदर ज़ोर से घूँसा पड़ा था कि हड्डी-पसली तक तिलमिला गई थी। आँखों से आँसू निकल रहे थे।

चाचीजी कहने लगीं—"अँधे, इसीलिए तुझे पढ़ने बिठाया था? अभी ऊपर से कोई चोर चोर—"

हलक सूखने लगा। रोना भूल गया। सारे बदन में कपकपी होने लगी। मेरी घिग्घी-सी बँध गई। एकाएक मार खाने और नींद खुल जाने के कारण पहले से ही चौंका हुआ था। चाची की सूरत देखकर यों ही बुखार-सा चढ़ने लगता था, और इस वक्त ऊपर से चोर की बात सुनकर मेरी हालत एकदम अजीब हो गई। डरते हुए जो ज़रा छत की तरफ निगाह दौड़ाई, तो चट से चाची के पैरों से लिपट गया।

चाची भी घबरा उठीं। पूछने लगीं—"क्या हुआ?"

मेरी ज़बान ही सट गई थी। जवाब देते न बन पड़ा। बस लिपटा ही रहा। चाची ने झुँझलाकर अपने पैर छुड़ाते हुए पूछा—"क्या है रे?"

उनके पैरों से और भी अधिक लिपटते हुए मैंने धीरे-से कहा—"चाची चो...।"

चाची के देवता कूच कर गए। घबराकर धीरे-धीरे कहने

लगीं—"क् क्-क्याऽ—"

मैंने तो अपनी आँखें बन्द कर लीं। और शायद चाची ने भी अपनी आँखें बन्द कर ली थीं।

किसी तरह काँपते हुए गले से आवाज़ निकालकर चाची ने कहा—"र-र-रमेश!"

मैंने उसी तरह कोशिश कर कहना चाहा—"चाची, चोर।" मगर घिग्घी बँध गई। मुँह से केवल निकला—"ईः-ईः-ईः!"

अब चाची ने मुझे अच्छी तरह अपनी छाती से चिपटाकर कहना शुरू किया—"ईः-ईः-ईः!"

हम दोनों एक दूसरे से चिपटे हुए काँप रहे थे।

मुँह से चोर-चोर कहकर हम लोग मुहल्ले-भर को जगाकर इकट्ठा करना चाहते थे; मगर घिग्घी बँध जाने के कारण मुँह से 'ईः-ईः-ओ-ओ' के सिवा और एक शब्द भी न निकलता था।

चचा ऊपर सोया करते थे। इतनी ताब भी गले में न थी कि उन्हें आवाज़ देते। बस, जितना अधिक डर लगता था, उतनी ही तेज़ी से 'ईः-ईः!' का राग अलापने लगता था। और, चाची की यह कैफ़ियत थी कि मैं जितना डरता था, चाची उससे चौगुना खौफ़ खाती थीं। मेरा पाँच वर्ष का चचाज़ाद भाई चौंककर जाग पड़ा, और हम लोगों की यह दशा देखकर कुक्का फाड़कर रो उठा।

रोने में 'मुनुआ' ने बी.ए. पास किया था। जब वह रोना शुरू करता, तो कम-से-कम तीन घंटे तक तरह-तरह से राग अलापता रहता और पास-पड़ोस के लोगों की नींद हराम कर देता।

"क्या है? यह तुम लोग क्या कर रहे हो?"

चाची मुझे छोड़ एकदम उधर जा चिपटीं। मैंने चाची की टाँग पकड़ी। मुनुआ भी उनसे चिपटकर चीखने लगा।

भई, अगर तुम लोग कहो, तो आज तुम्हारे सुर में सुर मिलाकर हँस लूँ। मगर उस दिन तो, सच यह है कि डरते-डरते पसीना छूटने लगा था।

"अरे! यह क्या करती हो? मेरी जान लोगी क्या?"

मगर वहाँ अपनी धुन में कौन किसी की सुनता है। चाची और ज़ोर से चिपट गईं, और इतनी चिपटीं कि लिए-दिए धम से ज़मीन पर गिर गईं।

"हाय राम रे! अरे मरा रे! अरे मुझे छोड़ो!! ओ रमेश, अपनी चाची को उठा भाई!"

अब ज़रा कुछ होश़ आया। डरते-डरते आँखें खोलकर देखा। चचा ज़मीन पर पड़े हुए थे। चाची उन्हें कसकर दबाए हुए थीं। चचा चीख़ रहे थे, चाची—'ई-ई' कर रिरिया रही थीं।

उस दिन बुरी तरह चचा का कचूमर निकल गया। चाची के डील-डौल को देखते हुए चचा उनके मुकाबले में डेढ़ पसली के ठहरते थे।

जब ज़रा तबीयत सावधान हुई, तब राज़ खुला। बात यह थी कि मुनुआ के रोने की आवाज़ जब सोते में चचा के कान में पड़ी, तो नीचे उसे चुप कराने की गरज से उतरे। मगर नीचे आकर जो यह माजरा देखा, तो चाची को झिंझोड़कर पूछा। चाची उस समय बेहद डरी हुई थीं। आँखें उनकी बन्द थीं, और उनके दिमाग में उस वक्त सिर्फ़ चोर की ही धुन समा रही थी। वह चचा को चोर समझ बैठीं। उसके बाद तो फिर आव देखा न ताव, धमककर चचा के ऊपर चढ़ बैठीं।

और, मेरी कैफ़ियत यह है कि जिसे मैं चोर समझ बैठा था, वह असल में छत की दीवार के ऊपर बना हुआ छोटा गुम्बद था, जिस पर टाट पड़ा हुआ सूख रहा था।

इसलिए गलती दोनों की थी। बल्कि यदि चाची की आत्मा इस समय स्वर्ग में बैठी हुई बुरा न माने, तो कहूँ कि ज्यादा गलती उन्हीं की थी। दिन-भर चोर-चोर कह कर मुझे डराती रहीं, रात में भी डराया, और उसके बाद चचा को ही चोर समझकर चोट पहुँचाई। मगर मार मैंने ही खाई। चाची ने भी मारा और चचा ने भी।

बच्चो, तुमसे क्या कहूँ, उस दिन मैंने इतनी मार खाई होगी कि यदि मेरी माँ होती, तो बदन-भर में हल्दी-चूने का लेप लगाकर मुझे आराम पहुँचाने की कोशिश करती।

ज़मींदार बाबू

'बाल-विनोद' के सम्पादक भी खूब हैं, जिन्होंने मेरे हाथ में एक बन्दर और एक बकरी को रस्सी में बाँधकर पकड़ा दिया, और कहा, इन्हें नचाकर दिखाइए। इसी पर मुझे एक बात याद आई, कहता हूँ।

आज से चार साल पहले की बात है, मैं अपने एक ज़मींदार दोस्त के यहाँ गया हुआ था। ज़मींदार साहब की और मेरी उम्र में इतना ही अन्तर था, जितना हुसेनाबाद और अमीनाबाद के घण्टा-घरों में है। फिर भी ब्राह्मण होने के नाते मैं ज़मींदार साहब का पूज्य था।

ज़मींदार महाशय के चार लड़के और एक दस वर्ष की लड़की है। ज़मीन-जायदाद उनके पास कम नहीं। सुनते हैं, उनके पिता चार लाख रुपया और पाँच गाँव छोड़कर मरे थे, जिसे उन्होंने अपने कौशल से अब काफ़ी बढ़ा लिया है। उन्होंने अपने चारों पुत्रों के विवाह ढूँढ़-ढूँढ़कर ऐसे खानदानों में किए थे, जहाँ सिर्फ़ एक लड़की 'को छोड़कर और कोई भी नाम-लेवा और पानी-देवा न था। इस तरह अब उन्होंने पाँच की बजाय नौ गाँव और पाँच लाख नकद जमा कर लिए थे। परन्तु अभी तक तोंद पूरी तरह भर न पाई थी।

बेचारे बड़े धर्म-भीरू हैं, परन्तु जहाँ धर्म के नाम पर कुछ पैसा खर्चने का सवाल आता है, वहाँ वह एक क्षण भी नहीं टिकते। मेरे ऊपर उनकी अपार श्रद्धा है, इसका कारण यह है कि न तो किसी प्रकार की दान-दक्षिणा ही स्वीकार करता हूँ, और मेरी खुराक भी अधिक नहीं। एक बार मैंने उनकी एक बहुत बड़ी समस्या बड़ी आसानी के साथ हल कर दी थी, तब से वह मुझे बहुत ही ज़्यादा मानने लगे थे। बात यों थी कि घर वालों ने उन्हें अपने स्वर्गीय पिता का श्राद्ध करने के लिए बहुत मजबूर किया था। बेचारे बड़े पशोपेश में पड़े हुए थे। पिता का श्राद्ध करने के लिए उन्हें गया जाना बहुत ज़रूरी था। न जाने पर घर और बाहरवाले सभी उनकी बड़ी निन्दा करते, जो उनके लिए असह्य होता। लेकिन गया तक जाने के मानी यह है कि उनके कम-से-कम सौ रुपए अवश्य ही उठ जाते। बड़े दीन भाव से मुँह लटकाकर उन्होंने मुझसे कहा–"क्या बताएँ पण्डित जी, इस बखत हमारी जान बड़े संकट में है।" यह कहकर उन्होंने मुझे अपने मन की बात बता दी।

मैंने उनसे पूछा–"आप अपने बाप के श्राद्ध में कितने रुपए खर्च करना चाहते हैं?"

उन्होंने बतलाया–"मैं पाँच रुपए से ज़्यादा खर्च नहीं कर सकता।"

मैंने कहा–"घबराइए मत, मैं पाँच रुपए में ही आपका गया-श्राद्ध करा दूँगा।"

हाथ जोड़कर, गिड़गिड़ाते हुए ज़मींदार साहब ने मुझसे कहा–"हें-हें-हें, मेरा गया-श्राद्ध नहीं पण्डितजी, मेरे पिता का।"

मैंने मन-ही-मन मुस्कराकर कहा–"अजी, मेरा मतलब यह थोड़े ही था कि आपका श्राद्ध हो। परमात्मा करे, आपको अपना

श्राद्ध नसीब ही न हो।"

मेरी बात न समझकर वह खाली हें-हें कर हँस दिए।

मैंने उनके मकान से लगभग एक मील दूर, उनके बगीचे में, एक तरफ एक चौड़ी-सी नाली खुदवाई। उसे ऊपर से घास-फूस और मिट्टी से ढँक दिया। मैंने उनसे कहा—"यह फल्गु नदी है, आप इसी के किनारे बैठकर अपने बाप को पिण्डदान दे दें।"

पहले ही कह चुका हूँ कि ज़मींदार साहब बड़े धर्म-भीरु थे। उन्होंने मुझसे कहा—"पण्डितजी, गया तो बिना रेल पर चढ़े कोई आदमी जा नहीं सकता। बिना रेल की सवारी के अगर कहीं मेरे बाप की आत्मा ने देख लिया तो बड़ा गज़ब होगा!"

मैंने कहा—"घबराइए मत, मैं इसका भी इन्तज़ाम करता हूँ।"

मैंने छह आने की चाभी की कूक से चलनेवाली रेलगाड़ी खरीदकर बगीचे में छोड़ दी। उनसे कहा—"आप इसी के साथ दौड़ते हुए फल्गु नदी तक चले जाइए; बस, आप गया पहुँच गए। रेलगाड़ी खड़ी देखकर आपके बाप की आत्मा को ज़रा भी शक न होगा।"

इस पर ज़मींदार साहब बहुत ही खुश हुए। तभी से वह मुझे बहुत मानते हैं।

पिछली बार जब मैं उनके वहाँ गया, तो मुझसे बोले—"पण्डितजी, लड़की के हाथ पीले करने हैं।"

मैंने कहा—"हल्दी से रंग डालिए।"

उन्होंने कहा—"अजी नहीं, उसकी शादी करनी है।"

बाद में उन्होंने मुझे बतलाया—"पड़ोस में ही एक ताल्लुकदार रहते हैं। उनकी उम्र साठ से अधिक है; परन्तु ब्याह करने की



ज़मींदार बाबू

उनकी बड़ी इच्छा है। मैंने सोचा, मेरी लड़की सुख से रहेगी इसलिए उनसे ब्याह की बात पक्की कर चुका हूँ। अब एक समस्या है। शादी आज ही रात को होगी, लेकिन दूल्हे की सवारी के लिए कहीं घोड़ा नहीं मिल रहा है। गाँववाले कहते हैं, हम बूढ़े के ब्याह के लिए घोड़ा नहीं देंगे, क्योंकि हम इस ब्याह के बहुत खिलाफ़ हैं। लेकिन मैं चाहता हूँ, उसके साथ अपनी लड़की की शादी कर उसकी रियासत भी अपने हाथ में कर लूँ। दूल्हा सब बातों के लिए राज़ी है, लेकिन वह कहता है कि बिना घोड़े पर सवार हुए हमारे खानदान में ब्याह पूरा नहीं होता। अब बड़ी आफ़त में पड़ा हूँ।''

गुस्सा तो मुझे उन पर बहुत आया, लेकिन उनके बार-बार गिड़िगिड़ाने पर मैंने उन्हें एक तरकीब बता दी।

जब बूढ़े ताल्लुकदार साहब उनके यहाँ चुपचाप ब्याह करने आए, तब ज़मींदार साहब ने मुझसे हाथ जोड़कर कहा—''पण्डितजी आप ही उन्हें समझाइए मुझसे वह कभी न मानेंगे। मैं इतने, बहीखाता देख लूँ।''

ताल्लुकदार महाशय को मैंने बुलाया—''आपको मैं ऐसी जुगत बतलाऊँ कि साँप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे।''

उन्होंने पूछा—''वह कौन सी जुगत है।''

मैंने ज़मींदार साहब के नौकर को कमरे के अन्दर ही घोड़ा लाने की आज्ञा दी। नौकर को पहले ही समझा दिया गया था; वह फ़ौरन जाकर काठ का एक छोटा-सा घोड़ा उठा लाया। ताल्लुकदार महाशय पहले तो उसे देखकर चकराए, परन्तु बाद में मेरी बात मानकर उसीसे अपना काम निकाल लिया।

मैंने मन-ही-मन यह निश्चय कर लिया था कि इस विवाह

को किसी भी तरह होने नहीं दूँगा। इसलिए जब वर महाशय विवाह-मण्डप में पहुँचे, तो मैंने बाहर जाकर कुछ लड़कों को इकट्ठा किया, और उन्हें एक बन्दर पकड़ लाने की आज्ञा दी। लड़के बन्दर पकड़ लाए, और उन्होंने मेरे आज्ञानुसार ही विवाह-मण्डप में पहुँचकर बूढ़े वर के ऊपर बन्दर छोड़ दिया। मोटे वर महाशय घबराकर भागे। ज़मींदार बाबू बहुत घबराए। उन्होंने मुझसे कहा कि इस समय मेरी बड़ी बदनामी होगी और पातक चढ़ेगा, यदि वर महाशय लौटकर न आए।

मैंने उनसे कहा—"ताल्लुकदार साहब तो अब किसी हालत में भी लौटकर न आएँगे। आप इस लड़की का विवाह इसी समय किसी न किसी के साथ अवश्य कर दें, वरना आपको पाप लगेगा।"

पाप का नाम सुनकर ज़मींदार साहब के होश उड़ गए। उन्होंने मेरे पैर पकड़ लिए, और कहा कि किसी तरह मुझे उबारिए। मैंने उन्हें धैर्य बँधाया और उसी समय एक दूसरे सुशील लड़के के साथ, जिसके माता-पिता को मैंने पहले से ही राज़ी कर रखा था, उस लड़की का विवाह करा दिया।

सूअर की कहानी

बच्चो! कहानी कहने से पहले मैं तुम्हें यह बतला देना चाहता हूँ कि मैं सूअर नहीं हूँ। यद्यपि बचपन में अक्सर बहुत-सी मामूली गलतियों पर पिताजी तथा स्कूल के बहुत-से मास्टरों ने मुझे यह बतलाया कि मैं सूअर हूँ। मौके पर बात छिपाए नहीं छिप सकती, और खासकर उस वक्त, जब कोई सम्पादक मेरे पास सूअर की तस्वीर भेजकर उस पर एक कहानी चाहता हो। हालाँकि यह तय बात है कि हिन्दुस्तान के सभी आदमी, कभी-न-कभी अपने लिए किसी-न-किसी के द्वारा यह विशेषण इस्तेमाल होता हुआ अवश्य सुन चुके होंगे।

ख्याल आता है, बहुत वर्ष पहले मैंने एक सपना देखा था। तब मैं शायद स्कूल के पाँचवें दरजे में पढ़ता था।

मैंने एक दिन सबेरे बड़े भाई साहब का फाउन्टेन पेन उठा लिया। उनके पास दो थे। सोचा, अगर एक से मैं इस वक्त 'खुशखती' लिख लूँ तो भाई साहब का कोई हर्ज़ न होगा।

लिखने से पहले एक बात दिमाग में आई। भाई साहब अक्सर कहा करते थे कि मोटी कलम से लिखने से लिखावट बहुत सुन्दर आती है। इस ख़्याल से कि भाई साहब बहुत खुश होंगे, और साथ ही साथ मेरा काम भी ठीक हो जाएगा, मैंने बड़ी


सूअर की कहानी

मेहनत से फाउन्टेन पेन की निब पत्थर पर घिसकर उसे हिन्दी लिखने लायक बना लिया। लेकिन क्या कहूँ, भाई साहब बजाय खुश होने के बेहद नाराज़ हुए, और मेरा कान पकड़, पिताजी के पास ले जाकर मेरी शिकायत कर दी। पिताजी गुस्से से दाँत पीसते हुए मेरी तरफ देखकर बोले—"अरे, यह बड़ा सुअर है।"

सुन रक्खा था कि अक्सर बड़ों-बड़ों से भी गलती हो जाती है, इसीलिए मैंने यह कहना चाहा कि बड़े तो भाई साहब हैं। मगर कह न सका, क्योंकि मेरे कुछ कहने-सुनने के पहले ही पिताजी ने मेरे कानों को मरोड़-मरोड़कर खटाई बनाना शुरू कर दिया था।

अंग्रेज़ी में एक मसल है—"आफ़त अकेली नहीं आती।" उस दिन स्कूल में भी कुछ ऐसी साइत से पैर रक्खा कि फाटक पर ही मुझे दुबारा सूअर की उपाधि मिली। बात यह थी कि मैं फाटक पर लगी चरखी पर टाँग रख आनन्द से चक्कर काटने लगा। पास ही दो-तीन तीसरे दरजे में पढ़ने वाले लड़के खड़े थे, जो स्कूल के अन्दर जाना चाहते थे। चरखी पर चक्कर काटने का आनन्द मैं तीसरे दरजे के लड़कों के लिए नहीं छोड़ सकता था, इसलिए उनकी राम-गुहार पर मैंने कतई कान न दिया। एकाएक पीछे एक मास्टर आ गए। मेरा मुँह दूसरी तरफ घूमा हुआ था, इसलिए उन्हें देख न सका। उन छोटे-छोटे बदमाशों ने तड़ से मेरी शिकायत जड़ दी। पहले तो समझा, मास्टर का नाम लेकर ये तीसरे दरजे के लड़के मुझे पाँचवें दरजे के विद्यार्थी को बनाना चाहते हैं। फिर मुँह घुमाकर जो देखा, तो चट से बस्ता उठाकर भागा। मास्टर साहब ने घुड़क कर कहा—"ठहर तो सूअर कहीं का।"

तुम लोग विश्वास करो या न करो, मगर यह सच है कि उस दिन मेरा, कोई नक्षत्र अवश्य ही खराब था, क्योंकि छहों घण्टों में सभी मास्टरों ने मुझे किसी-न-किसी बात पर, और भी बहुत-सी

बातों के साथ-साथ सूअर अवश्य कहा। वैसे तो ईश्वर की दया से हर रोज़ हिसाब के मास्टर के सिवा मझे और कोई सूअर न कहता था।

शाम को, घर लौट आने पर, खेल-ही-खेल में, छोटे भाई से किसी बात पर तकरार हो गया। उसने माँ से शिकायत की। और जहाँ तक ख़्याल पड़ता है, माँ ने भी मुझे सूअर की ही लकब से पुकारा था। क्योंकि यह तो मुझे अच्छी तरह याद है कि माँ ने जब मुझे खाना खाने के लिए बुलाया, तो मैंने झल्लाकर उत्तर दिया था—"मैं तो सूअर हूँ, फिर मुझे खाना खाने के लिए आप क्यों बुलाती हैं?"

उस दिन बिना खाए-पिए ही जल्दी सो गया। सपने में देखा मैं एक बहुत बड़े जंगल में पहुँच गया हूँ। जंगल में एक अमरूद का पेड़ था। स्कूल की बगिया से कच्चे अमरूद तोड़-तोड़कर खाने पर हेडमास्टर साहब बहुत मारते थे, इसलिए कच्चे अमरूदों से मुझे बहुत प्रेम हो गया था। उस जंगल में पिताजी, भाई तथा हेडमास्टर का न डर था; और दूसरी बात यह कि भूखा भी था। इसलिए जी भरकर अमरूद खाए। कुछ खाए, कुछ फेंके। परन्तु उस अमरूद के पेड़ का मालिक भी एक सूअर ही था—मेरा सा नहीं, सचमुच बनेला सूअर। उसने कहीं-से मुझे अमरूद फेंकते हुए देख लिया। वह दौड़ा मेरे पास। मैं भागा।

भागते-भागते मैं उसे चकमा देकर अपने कमरे में आ, पलंग पर लिहाफ़ से मुँह ढंककर सो गया। ज़मीन सूँघते हुए, पता लगाते-लगाते वह सूअर वहाँ आ धमका, और मेरा कान उमेठकर कहने लगा—"सूअर, पढ़ना-लिखना कुछ नहीं, बस खेलना, खाना और सोना ही जानता है। चल उठ।"

बस अब हद हो चुकी थी। एक सूअर ने जब मुझे सूअर

कहा, तो मैं उसकी बात सह न सका। मैंने झट से झल्लाकर कह ही दिया—"आप भी तो सुअर हैं।"

तड़ातड़ तमाचे पड़ने लगे। एकाएक आँख खुल गई। देखा, भाई साहब सामने खड़े कह कहे हैं—"बदमाश मुझे सूअर कहता है? बैठकर पढ़।"

तब, अरसे तक, मुझे इस बात पर ताज्जुब होता रहा कि सपने का सूअर एकाएक सचमुच मेरे भाई साहब के रूप में कैसे आ गया। मुझे अच्छी तरह ख़्याल है, बहुत दिनों तक मैं इस बात पर गौर करता रहा था; लेकिन कुछ भी समझ में न आया।

आज दिन में प. श्रीराम शर्मा की 'शिकार' नामक पुस्तक में बनैले सूअर के शिकार का वर्णन पढ़ते-पढ़ते सो गया, और स्वप्न में वही शिकार मैं भी खेलने लगा। अचानक 'बाल-विनोद' के सम्पादक ने मुझे जगाकर, सूअर की तस्वीर दिखा उस पर एक कहानी माँगी, तो मैं फिर यही बात सोचने लगा। बात किसी तरह भी समझ में नहीं आती। बड़ा परेशान हूँ। इसी से कहानी भी नहीं कह पाता। हाँ, अगर तुम लोग मेरी इस समस्या को हल कर दो, तो अलबत्ता एक मज़ेदार कहानी सुनाऊँ।

अमृतलाल नागर बैंक लिमिटेड

मुझे खूब अच्छी तरह याद है। तब मैं शायद छह या सात वर्ष का था। दादाजी ने किसी गलती पर मेरे कान उमेठ दिए थे। नौकर वहीं खड़ा था, इसलिए मैं इस अपमान को न सह सका। सोचने लगा, यह बड़े हैं, इसीलिए इन्होंने मेरा अपमान किया। मैं भी बड़ा होने की तरकीब सोचने लगा।

मेरे दादा स्वर्गीय पण्डित शिवरामजानी जी इलाहाबाद बैंक के संस्थापकों में से थे। लखनऊ के विशेष सम्मानित व्यक्तियों में उनका स्थान था। मैंने भी सोचा—एक बैंक खोलना चाहिए। बैंक खोलकर ही झट से बड़ा आदमी बना जा सकता है, इसका मुझे सहसा विश्वास हो गया।

मैंने अपने दोस्तों को इकट्ठा किया। उनसे कहा—"यहाँ जितने आते हैं, सब बड़े-बड़े ही आते हैं। हम लोग अपने पैसे बैंक में जमा नहीं करते, इसीलिए तो सब खर्च हो जाते हैं।"

रासबिहारी टण्डन ने कहा—"यह तो तुम ठीक कहते हो "अमृत।!"

मैं अपनी बात का समर्थन पा और भी जोश में कहने लगा, "इसीलिए मैंने सोचा है कि एक बैंक खोला जाए। और, बैंक खोलने में एक सबसे बड़ी शान यह रहेगी कि हम लोगों पर कोई

धौंस न जमा सकेगा। जब हमारा बैंक होगा, तब पढ़ने-लिखने से भी छुटकारा मिल जाएगा। तुम लोग तो खुद ही देखते हो, हमारे दादाजी को कभी सी-ए-टी कैट, कैट माने बिल्ली नहीं पढ़ना पड़ता; और न उन्हें पण्डितजी का ही डर रहता है। तुम लोग जानते हो, इसका क्या कारण है? यही कि वह बैंक के मैनेजर हैं। इसीलिए सब लोग उनका अदब करते हैं। बैंक खुल जाने के बाद हमारी भी लोग इसी तरह इ़ज़्ज़त करेंगे। क्या समझे टण्डन?"

टण्डन मेरी बातों के सहारे शायद किसी सुनहरे संसार में घूमने लगा था। मेरे प्रश्न पर सहसा चौंककर बोला—"हाँ, तो तुमने क्या कहा?"

मुझे गुस्सा आ गया। मैंने कहा—"तुम सूअर हो?"

टण्डन को भी गुस्सा आ गया। खड़ा होकर बोला—"बैंक में आप ऐसी बातें नहीं कह सकते।"

मैंने कहा—"मैं कह सकता हूँ।"

टण्डन बोला—"बैंक में सूअर वग़ैरा नहीं कहा जाता।"

मैंने मेज़ पर हाथ पटककर कहा—"हमारे बैंक में कहा जाएगा। मैं फिर कहता हूँ, टण्डन सूअर।"

"अगर तुम कहोगे, तो मैं भी कहूँगा, अमृत सूअर!"

अपना इतना बड़ा अपमान सहने के लिए मैं बिलकुल तैयार न था। मैं गुस्से के मारे काँपने लगा, और बदला लेने के लिए बढ़ ही रहा था कि पण्डित जी की आवाज़ सुनाई पड़ी।

पंडित जी से हम सभी डरते थे। दूसरे साथी तो भाग निकले, लेकिन टण्डन के तो देवता कूँच कर गए। वह भी उन्हींसे पढ़ता था। कमरे में आते ही टण्डन को देखकर उन्होंने पूछा, "क्यों बे सूअर, तू भी यहीं है? और तुम लोग लड़ क्यों रहे थे?"

मुझे फ़ौरन ही एक बात सूझी। टण्डन से अपने अपमान का बदला लेने के लिए अच्छा मौका देख मैंने कहा—"पण्डितजी, टण्डन कहता है—I goes और किताब में लिखा है—I go और, पण्डित जी, यह भी कहता है कि आपने बताया है कि किताब में गलत लिखा है।"

लाल-लाल आँखों से टण्डन की तरफ घूरकर पण्डितजी बोले, "क्यों बे सूअर, मैंने यह कब बताया था, बोल?"

बेचारा टण्डन मिमियाने लगा। वह अपनी सफाई भी न दे पाया था कि पण्डितजी ने उसके दोनों कान पकड़कर अपनी ओर घसीटते हुए उसकी पीठ पर दो घूँसे जमा दिए। टण्डन बिलबिला उठा। उसकी दशा देखकर मुझे भी दया आ गई।

पण्डितजी के जाने के बाद मैंने कहा—"टण्डन।"

टण्डन मुँह फुलाकर बोला—"मैं आपसे नहीं बोलता।"

मैंने उसे समझाना शुरू किया। कहा—"मैं तो तुम्हें एक सबक दे रहा था। आज तुम पण्डितजी से इतना डरते हो। अगर बैंक खुल जाएगा, तो पण्डितजी की मज़ाल नहीं कि तुम्हारे बदन पर उँगली भी लगा सकें। फिर चाहे तुम I go कहो या I goes, दोनों ठीक हैं।"

"लेकिन मैंने I goes कहा ही कब था, जो आपने पण्डित जी से झूठमूठ मेरी शिकायत कर दी?"

मैंने उसे समझाया—"वह तो जो बात होनी थी, सो हो गई। अब उसका ज़िक्र छोड़ो। मगर मैं तुमसे कहता हूँ, बैंक खुल जाने के बाद अगर तुम I goes भी कहा करोगे, तो भी ठीक होगा।"

टण्डन अब ज़रा धीरे-धीरे राह पर आया। कहने लगा—"तो क्या बैंक खुल जाने पर पढ़ाई खत्म हो जाएगी?"

"वह तो हो ही जाएगी। तब कोई हमें ज़बरदस्ती पढ़ने न

बैठा सकेगा। हाँ, जब हमारा मन चाहेगा, दिन-भर में किसी वक्त अखबार पढ़ लिया करेंगे, जैसे हमारे दादाजी पढ़ते हैं।"

"और, यह पण्डितजी?"

"अजी, पण्डितजी की बात भली बताई। इनको उसी वक्त शहर से बाहर निकाल दूँगा।"

टण्डन ने उतावली के साथ कहा —"तो फिर उसमें देर क्या है? आज ही बैंक खोल दो।"

मैंने कहा—"आज क्या, अभी से ही खुल गया। तुम्हारे पास कितने पैसे हैं?"

टण्डन को इस बैंक में शंका हुई बोला—"वाह, अभी कैसे खुल गया? न तो इसका नाम ही रक्खा गया है, न टेलीफ़ोन ही है, न बाबू लोग काम कर रहे हैं, और न चपरासी है। बैंक कहीं इस तरह खुलता है?"

मैंने कहा—"तो इसमें बात क्या है? नाम अभी सोच लो। मेरा ख़्याल तो यह है, उसका नाम इलाहाबाद बैंक लिमिटेड है, तो हम लखनऊ बैंक लिमिटेड रख लें।"

टण्डन बोला—"हम लखनऊ-इलाहाबाद के फेर में नहीं पड़ते। अगर कहीं लखनऊ-भर के आदमी आकर उसमें घुस गए तो बड़ी मुश्किल होगी।"

बात मेरी भी समझ में आ गई। मैंने टण्डन की पीठ ठोकी, कहा—"हो भोंदू, मगर बात कभी-कभी पते की करते हो। अच्छा, तो बैंक का नाम सोचो।"

थोड़ी देर तक सोचने के बार टण्डन मुस्कराकर बोला—"बैंक का नाम रक्खो रासबिहारी टण्डन बैंक लिमिटेड।"

मैंने कहा—"यह नाम नहीं रक्खा जा सकता।"

टण्डन ने पूछा—"क्यों?"

मैंने कहा—"बैंक मैं खोलूँगा, और नाम तुम्हारा रक्खा जाएगा? यह हरगिज़ नहीं हो सकता। बैंक मेरे नाम से खुलेगा।"

केवल टण्डन को इसमें आपत्ति थी। मैंने तब एक बात सोची। कहा—"अच्छा, जो ज़्यादा पैसे जमा करे, उसी के नाम से बैंक खुले।" सबने इसे मंज़ूर किया। मैं बेहद खर्चीला था। टण्डन ने भी सोचा होगा कि मेरे पास अधिक-से-अधिक दो-तीन आने पैसे निकलेंगे। और, वह अपने पैसे बचाता था। मैंने पूछा—"तुम्हारे पास कितने पैसे हैं?"

उसने कहा—"सवा बारह आने।"

दिल बैठने लगा। मेरे पास वाकई में सवा बारह पैसे भी न थे। फिर भी अकड़ के साथ मैं बोला—"मेरे पास एक रुपया है।"

दादाजी से रुपया ले लेना बांएँ हाथ का खेल था। बहरहाल बैंक मेरे ही नाम से खुला। दूसरे साथी बैंक के बाबू बने। टण्डन खज़ांची बना, लेकिन गोलक की ताली मेरे पास ही रही। छेदा चपरासी का लड़का सदन हमारे बैंक का चपरासी बना। कुल्लड़ में छेद करके टेलीफ़ोन बनाया। और, मैं ठाट से मैनेजर बनकर बैठ गया। घर-भर की धोतियाँ छत पर तानकर आफिस बना लिया। बैंक का काम चालू हो गया।

थोड़ी देर बाद टण्डन ने टेलीफ़ोन किया—"अमृत!"

मैंने कुल्लड़ में मुँह लगाकर कहा—"अबे, मैनेजर साहब कह, नहीं तो मार बैठूँगा।"

टण्डन ने बजाय टेलीफ़ोन पर बात कहने के परदेवाली धोती उठाकर कहा—"आप मैनेजर हों या कुछ भी हों, बैंक में मार नहीं सकते।"

मैंने कहा—"तो आप भी बैंक में मुझ अमृत नहीं कह सकते। मैनेजर साहब कहा कीजिए।"

टण्डन ने कहा—"तो आपको भी खज़ांची साहब कहना होगा।"

मैंने कहा—"मैं कहूँगा।"

इसके बाद परदा ठीक कर दिया गया। खज़ांची साहब ने मैनेजर साहब को टेलीफ़ोन किया—"बैंक में चैक-बुक तो है ही नहीं, लोग रुपया कैसे भुनाएँगे? लेजर-बुक भी नहीं है।"

दो मिनट तक गौर करने के बाद मैंने टेलीफ़ोन पर कहा—"हलो, खज़ांची साहब! आप एक काम कीजिए। अपनी हिसाबवाली कापी फाड़कर कल लेजर-बुक बना लाइएगा। मैं चैक-बुक का इन्तज़ाम करूँगा।" खज़ांची साहब बोले—"लेकिन मैनेजर साहब, पण्डितजी फिर कुछ कहेंगे तो नहीं?"

मैंने कहा—"आप खज़ांची होकर पण्डितजी से डरते हैं?"

खज़ांची साहब अकड़कर बोले, —"मैं बिलकुल नहीं डरता। कल बना लाऊँगा।"

शाम को दादाजी की चैक-बुक मैं उठा लाया। सोचा इनके पास तो बहुत-सी हैं। एक मैं ले लूँ।

दूसरे दिन इतवार था। लेकिन हमारा बैंक खुला रहा। दिन-भर दनादन चैकें कटीं। लैजर लिखा गया। बाबू लोगों ने भी काम किया। सदन चपरासी बाहर बैठा रहा। मैनेजर और खज़ांची दिन-भर टेलीफ़ोन पर ही बातें करते रहे।

सोमवार के दिन सबेरे ही दादाजी अपनी चैक-बुक तलाश कर रहे थे। मैं एकदम चुप्पी साध गया।

दिन में उधर दादाजी अपने बैंक गए, और मैं अपने बैंक में पहुँचा। धोतियाँ वगैरा ठीक तरह से बँधवाईं। थोड़ी देर में बाबू लोग भी आ गए। मुझे उस दिन घर से इकन्नी मिली थी, और बाबू लोग भी पैसे लाए थे। लेकिन खजांची अभी तक आए ही



नहीं थे। मैं गुस्से के मारे लाल हो उठा। करीब एक बजे टण्डन आया, और आते ही परदा उठाकर बोला—"अमृत, अब बैंक बन्द हो गया।"

मैंने कहा—"आप टेलीफ़ोन पर बात कीजिए। बैंक बन्द नहीं हुआ।" टण्डन अकड़कर बोला—"टेलीफ़ोन की ऐसी-तैसी। अब मैं बैंक में काम नहीं करूँगा।"

और बाबू लोग भी धोतियाँ हटाकर वहाँ आ गए। मैंने टण्डन से कारण पूछा। मालूम हुआ कि जैसे ही दस बजे हमारे खज़ांची साहब अकड़ते हुए अपने घर से बैंक की तरफ चले, पण्डित जी उन्हें पढ़ाने जा पहुँचे। खज़ांची साहब मेरे आश्वासन के अनुसार उनसे अकड़ गए, और पढ़ने से कतई इनकार कर दिया। उस पर पण्डितजी ने उनकी खज़ांचीगीरी की बिल्कुल परवा न कर वहीं, गली में ही, उनकी अच्छी तरह मरम्मत की, और कान पकड़कर घसीटते हुए घर ले गए। घर पर भी हिसाब की कापी की लेजर-बुक बना देने के कारण उन पर बहुत मार पड़ी। लिहाज़ा अब वह बैंक के खजांची नहीं बनेंगे।

इसके बाद टण्डन ने कहा—"बैंक अब टूट गया, और आप मेरे पैसे वापस कर दीजिए।"

दूसरे बाबू लोग भी इस घटना से डरकर अपने पैसे माँगने लगे।

मैं अभी इस विद्रोह को शान्त करने की सोच ही रहा था कि छत पर एक पतंग आकर मेरी तरफ गिरी, हमारे चपरासी साहब कायदा-तहज़ीब सब भूलकर उसे लेने झपटे। मैं गुस्से में भरा हुआ तो था ही, दो-तीन तमाचे कसकर जड़ दिए। चपरासी साहब रोते हुए नीचे भागे।

इधर अभी पैसे लौटाने के फेर में झगड़ा हो ही रहा था कि

दादाजी एकाएक छत पर आते हुए दिखाई पड़े। सदन ने शायद बैंक का हाल भी उन्हें सुना दिया था।

अपनी चैक-बुक उन्होंने हमारे बैंक में देखी। इधर विद्रोही खज़ांची और बाबुओं ने पैसों की शिकायत की। सदन चपरासी पहले ही भण्डाफोड़ कर चुका था।

दादाजी को गुस्सा आ ही रहा था। उसी समय पण्डितजी ने आवाज़ लगाई। दादाजी ने उन्हें भी अन्दर ही बुला लिया। ....फिर तो न कहना ही अच्छा होगा, क्योंकि अमृतलाल नागर बैंक लिमिटेड के मैनेजर साहब के दोनों कान सारंगी की खूटियों की तरह कस-कसकर उमेठे जा रहे थे, गालों पर तड़ातड़ तमाचे पड़ रहे थे और चपरासी, खज़ांची तथा बाबू लोगों के दिलों में ठण्डक पड़ रही थी।

लिटिल रेड इजिप्शिया

पण्डित लिटिल रेड इजिप्शिया छठे दरजे में मेरे साथ पढ़ते थे। और इसे मेरी खुशकिस्मती कहिए या बदकिस्मती कि मेरी सीट पर बैठते भी थे।

हुलिया उनकी साफ़ थी—सिर पर एक फुट लम्बी और तीन इंच मोटी अच्छी-खासी चोटी, चेहरे का रंग आबनूस से करीब-करीब मिलता-जुलता था और गौर से देखने पर यह मालूम हो जाता था कि अल्लाह मियाँ ने जल्दी में उनके खूबसूरत चेहरे पर हाथी की आँखें जड़ दी थीं। नाक के बारे में भी ऐसा कहा जाता है कि देवराज दन्द्र के रथ का पहिया इत्तफ़ाक से उसपर चल गया होगा। बहरहाल कहने का मतलब यह कि परमात्मा ने उन्हें खूबसूरत बनाने में काफ़ी मेहनत की है।

मोहनलाल गंज से लखनऊ में अंग्रेज़ी पढ़ने आए थे, वर्नाक्यूलर मिडिल पास कर, इसलिए हिसाब और जुगराफ़िया में सच्चे तथा अंग्रेज़ी में कच्चे थे।

पहले दिन जब दरजे में कदम रक्खा, तो लड़कों ने काफ़ी कहकहेबाज़ी के साथ आपका स्वागत किया। बेचारे बुद्धू से खड़े रह गए। फिर सतर्क दृष्टि से इधर-उधर ताककर मेरे पास जा बैठे।

पहला घण्टा हिसाब का ही होता था। चूँकि मैं हिसाब में बहुत काफ़ी तेज़ था इसलिए हिसाब पढ़ाने वाले मास्टर साहब ने भी बहुत काफ़ी इज़्ज़त करके मुझे सबसे पीछेवाली सीट पर बैठने की आज्ञा दे रक्खी थी। और, मेरी काबलियत के काफ़ी हद से कायल होने के कारण वह मुझसे कभी किसी सवाल का हल न पूछते थे। दरजे के और लड़के इसीलिए मेरे साथ बैठने में ज़रा हिचकते थे। मैं इतमीनान से पूरी सीट घेरकर बैठा करता था। इजिप्शियाजी का आना मुझे इसीलिए बहुत खला। लेकिन कर ही क्या सकता था। चुपचाप बैठने को जगह दे दी।

इजिप्शियाजी मेरे पास बैठे, और इतमीनान के साथ जेब से अपना बटुआ निकाला। मैं चौंका। उन्हीं दिनों मैंने भूतनाथ और चन्द्रकांता-संतिति पढ़ना शुरू किया था। डर हुआ कि कहीं यह तेजसिंह ऐयार के रिश्तेदार न हों। इजिप्शियाजी ने बाकायदा बटुए से पत्ती निकालकर मीजना शुरू किया। मैं ज़रा हटकर बैठ गया। फटाफट ताली पीटने की आवाज़ से पूरे दरजे-भर का ध्यान उनकी ओर खिंचा। मुझे तड़ातड़ दो-तीन छींके भी आ गईं। और भी घबराया। हिसाबवाले मास्टर साहब उस दिन आए न थे। इसलिए सबको पूर्ण स्वराज्य मिला हुआ था। दरजा-भर इजिप्शियाजी की यह हरकत और मेरी हालत देखकर हँस पड़ा। वह फिर बुद्धू बने, शायद उनकी समझ में यह आ ही न रहा था कि सब लोग आखिर किस बात पर हँस रहे हैं। फँकी लगाई, इतमीनान से अपने दोनों हाथ कोट से पोंछे और निचला होंठ तंबाकू से फुलाकर अकड़ कर बैठ गए। लड़के उनकी यह मुद्रा देखकर और ज़ोर से हँस पड़े।

आपने मेरे कँधे पर निहायत बेतकल्लुफ़ी के साथ हाथ रखकर [illegible] हुए पूछा—"हे जी, हे, ई सब पंच काहे हँसत हैं?"

बोलते समय उनके मुँह से थूक की छीटें उड़कर मेरे मुँह पर गिरीं। काफ़ी ज़ोर से गुस्सा आ गया। झँझुलाकर मैंने कहा—"अलग बैठो जी।"

आप बिगड़ गए, कहने लगे—"काहे, अलग क्यों बैठें? हम कोई कोरी-चमार थोड़े हैं।"

मैंने कहा—"तुम उनसे भी गए-बीते हो।"

उन्होंने कहा—"ई न समझ लेना कि हम दिहाती हन। तुम्हरे आइसे बीस मनई का हम रोज़ चरात हैं।"

मैंने कहा—"तो फील्ड में जाकर चर।"

दरजा-भर फिर ज़ोर से हँस पड़ा। उन्हें गुस्सा आ गया। मुँह में तम्बाकू और थूक काफ़ी भरा हुआ था। पिच्च से दीवार पर थूका, कोट की बाँह से मुँह पोंछा, और बाँह चढ़ाते हुए मुझे मारने के लिए झपटे।

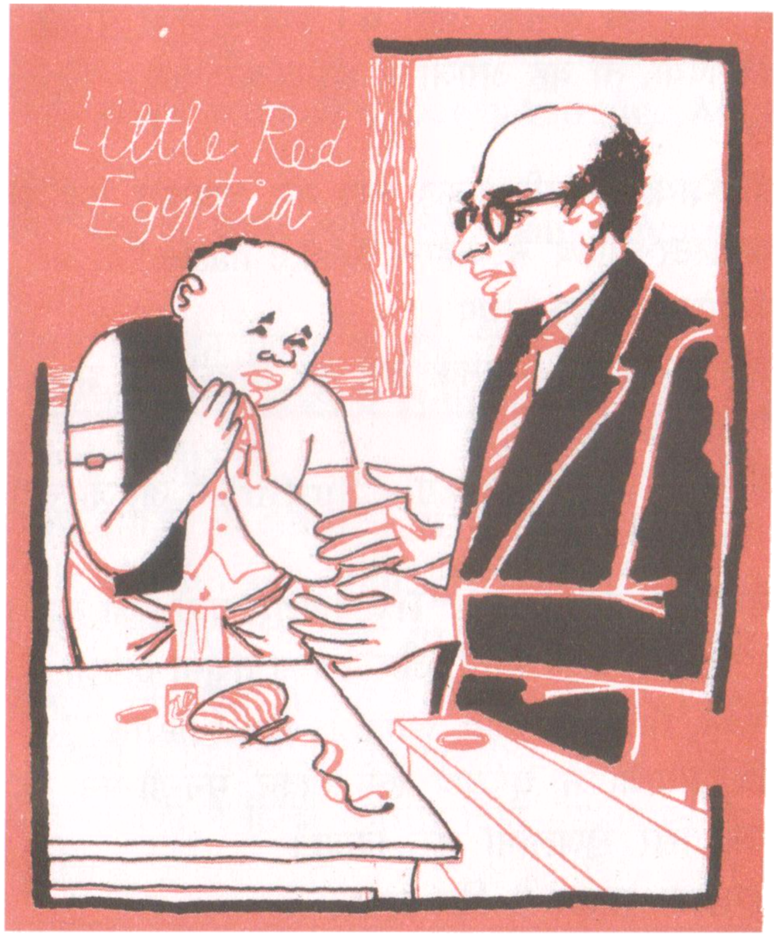
अब आप यह समझिए कि वह उम्र और ताकत में हम सबसे काफ़ी बढ़े-चढ़े थे—यह तो उनका डील-डौल और उनकी बड़ी-बड़ी मूँछे साफ़ बतला रही थीं। मुझे डर लगा कि कहीं यह मेरा कचूमर न निकाल दें।

यह तय था कि वह मुझे दो-एक हाथ करारे-करारे रसीद करें कि उसी वक्त शोरगुल सुनकर हेडमास्टर साहब हमारे दरजे में आए। उनके आते ही दरजे में मौत का सन्नाटा छा गया था। हेडमास्टर साहब ने फिर पूछा—"तुम्हारे दरजे का मानीटर कौन है?"

मानीटर उठ खड़ा हुआ। हेडमास्टर साहब उससे इस शोरगुल के बारे में कैफ़ियत तलब की।

सब कुछ सुनकर उन्होंने इजिप्शिया से पूछा—

"What is the matter?"


Little Red
Egyptia

इजिप्शियाजी उठ खड़े हुए। बौखलाए हुए कहने लगे—"जनाब, ये सब लोग मुझे देहाती समझकर तंग कर रहे हैं।"

हेडमास्टर साहब को एक बात से सख्त चिढ़ थी। वह आमतौर पर खुद भी अंग्रेज़ी में बातचीत करते थे, और हम लोगों से भी ऐसा ही करने की उम्मीद रखते थे। इजिप्शियाजी ने जब हिन्दी में जबाब दिया, तो वह अंग्रेज़ी में झुँझलाकर बोले—"Speak in English."

इजिप्शियाजी सारी अकड़ भूल गए, चुपचाप खड़े रहे।

हेडमास्टर साहब ने कहा—"Make haste."

इजिप्शियाजी फिर चुप।

हेडमास्टर साहब ने उनके पास आ, उनकी बाँह झँझोड़ते हुए कहा—"Speak-Speak."

इजिप्शियाजी हकलाने लगे—"Sir-Sir" मैं अंग्रेज़ी नहीं बोल सकता जनाब।"

हेडमास्टर साहब बोले—"Try, कोशिश करो। जो कुछ कहना हो, उसे पहले हिन्दी में सोचो, और उसका तर्जुमा अंग्रेज़ी में करो। हाँ, "Now, first tell me, what is your name?"

इजिप्शियाजी ने चुपचाप खड़े होकर मन-ही-मन बुदबुदाते हुए अपना सिर खुजलाना शुरू किया।

हेडमास्टर साहब ने फिर पूछा।

इजिप्शियाजी धीरे-धीरे कोशिश कर कहने लगे—"Sir, sir, my name is Little Red Egyptia"

हेडमास्टर चक्कर में आ गए। कहने लगे—"Little Red Egyptia! Are you a Christian?"

इजिप्शियाजी ने थूक छोड़ते हुए कहा—"No, no sir, I am–I,I,I am-am–"

इजिप्शियाजी एकाएक रुक गए। हेडमास्टर साहब ने पूछा "हाँ–"you are a—speak, make haste,"

इजिप्शियाजी खीसें निपोरकर, हाथ जोड़ते हुए कहने लगे–"मास्टर साहब, मुझे हिन्दू की अंग्रेज़ी बता दीजिए।"

इजिप्शियाजी बुत की तरह चुप।

हेडमास्टर साहब ने कहा–"So you are a Hindu! Eh! But your name is rather somewhat strange, Mr. Little Red Egyptia!"

इजिप्शियाजी कहने लगे–"Sir, I am Egyptia" ब्राह्मण हिन्दू।"

हेडमास्टर साहब चक्कर में पड़े। इस बार उन्होंने अच्छी-खासी पुरानी आदत को छोड़ हिन्दी में ही पूछा–"ये इजिप्शिया कौन-से ब्राह्मण होते हैं जी?"

इजिप्शियाजी ने अंग्रेज़ी में ही जवाब दिया–

"Sir, Kanaujias within Egyptia Brahmans are..."

अंग्रेज़ी के एम. ए. होते हुए भी हमारे हेडमास्टर साहब इजिप्शियाजी की अंग्रेज़ी समझने में असफल रहे। उन्होंने झुँझलाकर कहा–"हिन्दी में कहिए, इजिप्शिया कौन ब्राह्मण होते हैं?"

इजिप्शियाजी ने हिन्दी में उत्तर दिया–"जनाब मिश्र ब्राह्मण होते हैं।"

हेडमास्टर साहब कहने लगे–"तो आप इजिप्शिया-इजिप्शिया क्या बक रहे थे?"

इजिप्शियाजी हकलाने लगे। हेडमास्टर साहब के दुबारा पूछने पर उन्होंने बताया–"मैंने इंगलिश जबान में कहा था जनाब।"

हेडमास्टर साहब के कान ठनके। उन्होंने अपनी मुस्कराहट दबाते हुए पूछा–"अच्छा, अब अपना नाम हिन्दी में बतलाइए।"

इजिप्शियाजी ने बताया—"मेरा नाम छोटे लाल मिश्रा है, जनाब।"

हेडमास्टर ने पूछा—"और इसका अंग्रेज़ी तर्जुमा क्या है?"

"लिटिल रेड इजिप्शिया, जनाब!"

मिस्टर छोटे लाल मिश्रा आज अंग्रेज़ी के एम. ए. हो गए हैं, मगर अब भी जब कभी भेंट हो जाती है, उन्हें मिस्टर लिटिल रेड इजिप्शिया ही कहकर संबोधन करता हूँ। पहले वह इससे चिढ़ा करते थे, लेकिन अब मुस्करा देते हैं।

●●●

सरल बालोपयोगी कहानियां

सूखा गुलाब	शिवानी
राधिका सुन्दरी	शिवानी
स्वामीभक्त चूहा	शिवानी
बिन्दो का लड़का	शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय
आनन्द मठ	बंकिम चन्द्र
अक्ल बड़ी या भैंस	अमृतलाल नागर
नटखट चाची	अमृतलाल नागर

प्रेमचन्द की सरल, सचित्र बाल कहानियां

बूढ़ी काकी
बड़े घर की बेटी
सुजान भगत
परीक्षा
शतरंज के खिलाड़ी
दो बैलों की कथा
मां की ममता
शिकारी राजकुमार
गुल्ली-डण्डा
रानी सारंधा
नमक का दरोग़ा
रामलीला
पंच परमेश्वर
मन्दिर
ईद का त्यौहार
सब से बड़ा तीर्थ
कुत्ते की कहानी
मेरी कहानी
रामकथा
जंगल की कहानियां

रवीन्द्रनाथ टैगोर की सरल बाल कहानियां

भोला राजा
काबुलीवाला
पारसमणि
मास्टरजी
तोते की कहानी
राजा का न्याय

राजपाल

ISBN 81-7028-549-6

9788170285496